शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जैनेन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन

आकांक्षा जैन (शोधार्थी)
डॉ.कुसुमलता श्रीवास्तव (निर्देशक)
प.म.ब.गुजराती वाणिज्य महाविद्यालय
इन्दौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

जैनेन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण कम मिलता है किन्तु ग्रामीण जीवन के संबंध में उनके विचार हमें उनके अन्य साहित्य में जरूर प्राप्त होते हैं। जैनेन्द्रजी महात्मा गांधी की तरह ग्राम-स्वराज्य के पक्ष में हैं। जैनेन्द्र विकेन्द्रीकरण के समर्थक रहे हैं। बिना गाँवों को सम्पन्न किये देश सम्पन्न नहीं हो सकता। जैनेन्द्रजी को उस दिन की प्रतीक्षा थी जब मानव जाति का विस्तार संगठित शक्ति के से संभव हो सकेगा। प्रस्तुत शोध पत्र में जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के साथ-साथ उनके विचारों में ग्राम स्वराज्य की अवधारणा पर विचार किया गया है

प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन बहुत ही दयनीय स्थिति में था। लोगों में आजीविका के प्रति अत्यधिक निरा शा थी। समाज कई वर्गों में विभाजित था। ऐसे में स्वतंत्रता आंदोलन धीरे-धीरे गति पकड़ रहा था। आर्थिक विषमताएँ अपने चरम पर थीं। ग्रामीण किसान वर्ग सर्वाधिक कठिनाइयों में था। थोम्पसन और गैरेट ने अपने इतिहास1 में लिखा है जो भारतवर्ष कभी धन-धान्य से पूर्ण था , अंग्रेजी शासनकाल के स्थापित होने के साथ ही निर्धन होना प्रारंभ हो गया था। जब से अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ पैगोड़ा वृक्ष का हिलाया जाना प्रारंभ हुआ, अर्थात् आर्थिक परिस्थिति दिनोंदिन दयनीय होती गई। अंग्रेजों के प्रगतिशील राज्य में भी कृषि का तरीका परंपरागत ही था। उपज में लगातार कमी होती जा रही थी। फसलों की कीटों से रक्षा की वैज्ञानिक एवं आधुनिक प्रक्रियाएँ भारतीय कृषकों को नहीं बताई जाती थीं। कृषि जोत दिन प्रतिदिन छोटी होती जा रही थी। कृषकों के आर्थिक विकास के लिए कोई विशेष उपाय नहीं किए जा रहे थे। सरकार को केवल 'लगान' से मतलब था। इसका चित्रण साहित्यकारों ने किया है। प्रेमचन्द ने साहित्य को कल्पना-लोक से निकालकर यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़ा किया। जब जमींदारों के प्रभाव और आतंक का सूरज तप रहा था, तब भी शोषित वर्ग में कुछ युवक यह अनुभव कर रहे थे , कि जमींदारों का सारा वैभव उनके श्रम की नींव पर ही खड़ा है। चूँकि जमींदारों का खेतों पर अधिकार है अतः वे बिना तिनका तोड़े सुख-भोग करते रहते हैं।2 'अलग-अलग वैतरणी' 'आधा गाँव', 'जल टूटता हुआ' आदि उपन्यासों में यह साफ दिखाई देता है कि अधिकतर ग्रामीणजन जमींदारों की जकड़ से मुक्त होते गए। जमींदारी उन्मूलन के बाद भी कुछ भू-स्वामी अपनी निरंकुशता को नहीं छोड़ पाए।3

जैनेन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन

जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द की इस परम्परा का आंशिक रूप में निर्वाह किया है। उनके किसी भी

उपन्यास में ग्रामीणों की समस्याओं को प्रमुखता से केन्द्रित तो नहीं किया परन्तु फिर भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की झलक प्रायः देखने को मिलती है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामान्यतः घटनाएँ दिल्ली में ही घटती हैं। इसका कारण यह है कि स्वयं जैनेन्द्र दिल्ली के स्थायी निवासी थे। 'त्यागपत्र' और 'व्यतीत', 'सुखदा', 'सुनीता' को छोड़कर अन्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि में दिल्ली तो अनिवार्य रूप से है ही। इसके अतिरिक्त 'परख' में कश्मीर और एक गाँव, और 'व्यतीत' में कश्मीर, शिमला, मुम्बई, आसाम आदि स्थानों पर घटनाएँ घटती हैं। 'त्यागपत्र' में घटनाओं के केन्द्र संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के कुछ जिले हैं जिनके नाम नहीं दिए गए हैं। 'सुखदा' उपन्यास में जैनेन्द्र ने ग्रामीण समाज में नारी की कुंठा और पराधीनता को चित्रित किया है। "घर में स्त्री कितनी पराधीन है। वहाँ उसकी उन्नति के मार्ग प्रायः बन्द ही है। नहाई-धोई और सभी काम किये। लेकिन अनुभव होता गया कि वह एक चक्कर है , जिसमें जीवन की स्फूर्ति नहीं है। सिर्फ एक क्रम है और हर व्यतिक्रम अपराध।"4

'परख' उपन्यास में कट्टो , सत्यधन, बिहारी, गरिमा, आदि प्रधान पात्र हैं। इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने ग्रामीण जीवन का उल्लेख किया है। सत्यधन ने वकालत पास कर रखी है। नगर के कोलाहल से दूर गाँव में वह एक सीधी-साधी, सभ्यता के व्यर्थ आडम्बर से अछूती ग्रामीण कि शोरी कट्टो की प्रतिमा अपने मानस में प्रतिष्ठित कर लेता है , किन्तु उसका विवाह बिहारी की बहन गरिमा से हो जाता है। बिहारी और कट्टो भी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। बिहारी एक कृषक का जीवन व्यतीत करने किसी गाँव चला जाता है। कट्टो भी अपने गाँव जाकर बच्चियों को पढ़ाने का काम सम्हाल लेती है।5 गरिमा को कट्टो से ईर्ष्या होने लगती है। इसके बाद सत्यधन गाँव में नहीं रह पाता है। गाँव की जलवायु गरिमा के अनुकूल नहीं है। भगवतदयाल उसे बुला लेते हैं।

'परख' उपन्यास में ग्रामीण जीवन के वातावरण की स्थिति का चित्रण करते हुए जैनेन्द्र ने गाँवों में प्रचलित बाल विवाह एवं बाल विधवा की समस्या को प्रस्तुत किया है। समाज में विधवा महिलाओं की स्थिति को कट्टो के माध्यम से व्यक्त किया है , किन्तु स्त्री-पुरूष संबंधों की यथार्थ जटिलताओं की नितांत उपेक्षा कर चौदह वर्ष की कट्टो और सत्यधन में एक वायवीय रोमांस को जैनेन्द्र विकसित करते जाते हैं , जो सामान्यतः ग्रामीण जीवन में नहीं होता है।6

जैनेन्द्र के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण कम मिलता है, किन्तु ग्रामीण जीवन के संबंध में उनके विचार हमें उनके अन्य साहित्य में जरूर प्राप्त होते हैं। जैनेन्द्रजी महात्मा गांधी की तरह ग्राम-स्वराज्य के पक्ष में हैं। जैनेन्द्र विकेन्द्रीकरण के समर्थक रहे हैं। बिना गाँवों को सम्पन्न किये देश सम्पन्न नहीं हो सकता। जैनेन्द्रजी को उस दिन की प्रतीक्षा थी जब मानव जाति का विस्तार संगठित शक्ति के त्रास से संभव हो सकेगा। श्रम का उत्सव चारों ओर मनाया जा रहा होगा। हर व्यक्ति लगन व निष्ठा से श्रम करेगा, अपने प्रति ईमानदार होगा। दूसरे के लिए उसमें उत्सर्ग की उदात्त भावना होगी। "जबकि उपज और खपत तथा श्रम और पूंजी के बीच इतना फासला न होगा कि बीच में बटाव के लिए किसी तीसरी बुद्धि या शक्ति की जरूरत हो। जब आर्थिक समस्या न्यूनतम हो जाएगी और मनुष्य की समस्या नैतिक और आध्यात्मिक ही हुआ करेगी। जब आर्थिक अभाव नहीं , बल्कि हार्दिक सद्भाव मनुष्य को चलाया करेगा।"7

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आर्थिक समानता के लिए जैनेन्द्र 'ग्राम-स्वराज्य' को सर्वश्रेष्ठ उपाय मानते हैं। ग्राम स्वराज्य से ही त्रस्त मानवता को राहत मिलेगी। भारत की संस्कृति समन्वयात्मक है। उसमें सर्वश्रेष्ठ पुरुष न धनी है, न सत्ताधीश, वह तो साधु है, इस तरह जो जितना रोगी , निर्बल, अनपढ़ और हीन है , उसको उतनी ही अधिक वस्तु की सुविधा चाहिए।.....उन्नति और ऊँचाई सम्पत्ति में नहीं , पवित्रता में है। जब तक मूल दृष्टि में वह क्रांति नहीं आ जाती , हमारी महँगाई और दीनता दूर नहीं हो सकती। पसीने की मेहनत से आने वाला अनाज तब तक पढ़ी-लिखी दिमागी ऐय्या शी के पेट में जाता तब तक मेहनत भूखी की भूखी ही रहेगी।"8

जैनेन्द्रजी ग्राम स्वराज्य के लिए ग्रामोद्योग के विकास पर बहुत जोर देते हैं। प्रत्येक गाँव अपनी सीमा में अपनी आव श्यकतानुसार उन्नति करे तब शोषक वर्ग नहीं रह सकता। तब कोई भूखा भी नहीं मर सकता। .....सत्ताएँ टूटेंगी और बिखरेंगी तो इसी तरह से कि प्रत्येक व्यक्ति परिश्रमी बने और आत्मनिर्भर बने। इस तरह से प्रत्येक श्रमिक स्वयं में सत्तावान और स्वाधीन होगा।9 तब धन-संचय न हो सकेगा अतः श्रम का ह्रास भी नहीं होगा। तब 'अभाव' प्रमादी और श्रम के कतराने वालों के पास ही रहेगा।

जैनेन्द्रजी कहते हैं कि , "अहिंसक कर्म, धन और सत्ता को विकेन्द्रित करता है। इनके केन्द्रीकरण पर बसे हुए बड़े-बड़े शहर जो दुशमन के लिए प्रलोभन होते हैं - अहिंसक कर्म से वे बिखरेंगे। वैसे कर्म से गाँव बसेंगे और उनकी खु शहाली बढ़ेगी। लाखों खु शहाल और स्वाधीन गाँव वाले हिन्दुस्तान को किसी दुशमन से किसी डर की जरूरत न रहेगी। गाँव पर बम डालना पैसे के लिए अशर्फी बर्बाद करना होगा तब 'सोशल इकानामी' का ढांचा ही दूसरा होगा। तब सत्ता का इस मुट्ठी में से उस मुट्ठी में आने का सवाल ही न होगा। क्योंकि तब किसी की बंधी मुट्ठी हो ही न सकेगी। दुश्मन कोई होगा भी तो वह उस सोशल इकानामी में आत्मसात् हो जाएगा, क्योंकि उसके पास कोई साधन ही न होगा कि वह उसको तितर-बितर कर सके। वह पहले ही ऐसी बिखरी हुई होगी कि उसका केन्द्र हर जगह होने के कारण कहीं नहीं होगा।"10

इस प्रकार जैनेन्द्र ग्रामीण जीवन की विभिन्न आर्थिक व सामाजिक विषमताओं से परिचित थे और उन्हें दूर करने के उपायों का उल्लेख भी उन्होंने किया है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाकर ग्रामीण जीवन का चित्रण अंशत: किया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1.थाम्पसन एन्ड गैरेट, राइज एन्ड फुलफिलमेन्ट आव ब्रिटिश रूल इन इन्डिया, लन्दन
2.जिंदगीनामा, भाग प्रथम, पृ. 80
3.मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 97
4.सुखदा, जैनेन्द्रकुमार, पृ. 47
5.परख, जैनेन्द्रकुमार, पृ. 123
6.जैनेन्द्रकुमार चिंतन और सृजन, मधुरिमा कोठारी, पृ. 144
7.ब्लैक आऊट, सोच-विचार, जैनेन्द्र, पृ. 163
8.भारतीय को खतरा, परिप्रेक्ष्य, जैनेन्द्र, पृ. 168
9.खादी और उसके फलितार्थ, जैनेन्द्र, पृ. 201
10.ब्लैक आऊट, सोच विचार, जैनेन्द्र, पृ. 162-163